केले की खेती

भारत में केला सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टिकोण से एक बहुत ही महत्वपूर्ण फल है और लाखों लोगों के जीवनोपार्जन का साधन है। जागतिक नजरिए से 10 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल से 98 मिलियन टन पैदावार मिलती है। भारत केले का प्रमुख उत्पादक है जो 5.00 लाख हेक्टेयर क्षेत्र से 17.50 मिलियन टन उपज प्राप्त करता है। यह अधिकतर तमिलनाडु, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश और गुजरात में उगाया जाता है। असम, बिहार, केरल, मध्यप्रदेश, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में भी केले की खेती की जाती है।

जलवायु :

यद्यपि केला ऊष्ण कटिबंधीय फल है यह आर्द्र तथा उपोष्ण और 2000 एम.एस.एल. की ऊँचाई को भी सह सकता है। यह कम तापमान तथा पानी की रुकावट को नहीं सह सकता। नए पत्तों का निकलना तथा फूलों का विकास मुख्यतः तापमान पर निर्भर करता है।

मिट्टी :

गहरी दुमट, हवादार और हल्की मिट्टी में यह अच्छा उगता है। यह 6.5 से 8.0 तक के पी.एच. को सह सकता है।

प्रजातियां :

ग्रेंड नेने, रोबस्टा, ड्वार्फ, केवेन्डिश, पूवन, रसथाली, नेन्द्रन, करपूरवल्ली, नेय पूवन, मोन्थान तथा पहाड़ी केले कुछ प्रमुख प्रजातियां हैं।

प्रतिपादन :

पारम्परिक तरीके से सकर अर्थात पौध या फिर कन्दों के जरिए केले के पौधों को उगाया जाता है। चौड़े पानीदार सकरों की अपेक्षा तलवार या खड्ग के आकार के और पतले लम्बे पत्तों वाले सकर को चुना जाता है। छटाई किए गए सकर अथवा टुकड़ों का वजन 1.0 से 1.5 कि.ग्रा. तक हो होना चाहिए जिसमें से अंकुर फूट रहा हो। रोपण सामग्री का वर्गीकरण बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। इससे फसल का विकास और घारों के निकलने का समय, सभी में एकरूपता होती है। सकर की अपेक्षा ऊतक संवर्धन द्वारा प्रतिपादित पौधों के महत्व को पहचानते हुए आज ऊतक संवर्धित पौधे रोगरहित होने के कारण अधिक लोकप्रिय हो रहे हैं तथापि ऊतक संवर्धन द्वारा केले की खेती में शुरुआत की लागत अधिक होती है।

रोपण

रोपण के पहले 45x45x45 सें.मी. गड्ढों में अच्छी तरह गली हुई गोबर खाद डाला जाता है अथवा उन गड्ढो में 20-30 किलो/गड्ढा कम्पोस्ट भरा जाता है। चुने हुए सकर की अनावश्यक पत्तियां, वानस्पतिक विकास और अत्यधिक जड़ों आदि को काट दिया जाता है। इन सकरों को सूत्र कृमि एवं तना विविल से बचाने के लिए कन्दों को मिट्टी के घोल में 20-40 कण/सकर के हिसाब से कार्बोफ्यूरान डालकर उसमें इन्हें डुबोया जाता है।

जून–जुलाई रोपण के लिए उचित महीने हैं। वैसे तो वर्ष के किसी भी समय रोपण किया जा सकता है बशर्ते सर्दियों को छोड़कर अन्य मौसम में सिंचाई की पूरी सुविधा हो।

घने रोपण से अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है। महाराष्ट्र में एक हेक्टेयर में 45,000 पौधे लगाए गए जबकि अन्य राज्यों में 2 अथवा 3 चक्रों में 3,000 से 3,500 पौधों का इस्तेमाल किया गया। ग्रेन्ड नेने, राबस्टो, ड्वाफ केवेन्डिश (महाराष्ट्र और गुजरात), मालभा (पश्चिम बंगाल) और पूवन (केरल और तमिलनाडु) के लिए दुहरी कतार वाली प्रक्रिया अपनाई गई है। इस पद्धति में कतारों के बीच 1.2 मी. और दो

कतारों के बीच 1.8 से 2.0 मीटर तक की दूरी रखी जाती है। पौधों के बीच 1.2 मीटर का फासला रखा जाता है। रोबस्टा, ड्वार्फ केवेन्डिश, राजापुरी, बसराय और कोथिया 1.5x1.5 मीटर की दूरी पर (4444 पौधे प्रति हेक्टेयर) लगाया जा सकता है।

उर्वरक डालना :

केले के प्रत्येक पौधे के लिए 150-200 ग्राम नाइट्रोजन, 40-60 ग्राम फास्फोरस और 200-300 ग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है। यह खुराक मिट्टी और किस्म पर भी निर्भर करती है। नाइट्रोजन और पोटाश को चार खुराकों में डाला जाना चाहिए अर्थात् रोपण के 30, 75, 120 और 165 दिनों बाद डालना चाहिए जबकि फास्फोरस को रोपण के समय ही डाला जाता है। पुनरुत्पादन अवस्था में नाइट्रोजन का एक चौथाई हिस्सा और पोटाश का एक तिहाई हिस्सा डालना लाभदायक पाया गया। बूंद सिंचाई द्वारा उर्वरक डालने से पौधों की पोषण क्षमता में वृद्धि देखी गई। इसके साथ ही आई.आई.एच.आर. द्वारा तैयार किया गया बनाना स्पेशल (5 ग्रा./ली.) को 15 लीटर पानी में 1 शैम्पू सैशे के साथ मिलाकर छिड़काना भी उचित पाया गया। यह छिड़काव 16 पत्ती और 30 पत्ती अवस्था में किया जाना चाहिए। घार निकलने के 30 और 60 दिनों के बाद इसके दो छिड़काव किए जाते हैं।

सिंचाई :

अधिक सूखी मिट्टी और गर्म मौसम में केले को कम अंतर पर पानी डालना पड़ता है। औसतन रोबस्टा के लिए गरम महीनों अर्थात् फरवरी से मई तक 3 इंच/एकड़ सिंचाई की जरूरत होती है। बूंद सिंचाई दिन–ब–दिन महत्वपूर्ण होती जा रही है और हर जगह खासकर कम वर्षा वाले क्षेत्रों में यह बहुत ही लोकप्रिय हो रहा है। केले के पौधों में पर्याप्त पानी की आवश्यकता को पूरा करने के लिए माइक्रो ट्यूब द्वारा दो एमीटर (4 लीटर/घंटे) को पौधों से 25 सें.मी. दूर पर रख देना चाहिए जो वाष्पीकृत पानी का 75-80 प्रतिशत कमी को पूरा करता है।

डीसकरिंग :

मातृ पौधे में फूल आने तक सभी सकर को निकाल देते हैं। और बाद में केवल एक सकर को ही रखा जाता है। डीसकरिंग का यही सबसे अच्छा तरीका है। फिर भी घने रोपण में कटाई के उपरान्त सकर को बढ़ने नहीं देना चाहिये ताकि अगले फसल में सारी शस्य क्रियाओं में एकरूपता बनी रहे।

खरपतवार नियंत्रण :

प्रारम्भिक छः महीनों में खरपतवार नियंत्रण से उर्वरक तथा उपज में बढ़ोत्तरी होती है। दोहरी अंतर शस्य से खरपतवार दब जाते हैं और उस अंतर शस्य को पुष्पण के समय जमीन में गाड़कर और ऊपर से ग्लाइफोसेट 1-2 कि./हे. के दर से रोपण के 60 दिनों बाद छिड़काने की सिफारिश की गई है।

ट्रेशिंग :

सूखे पत्तों पर कीड़े दीर्घ निद्रा में सोते हैं और अनेक रोगों का कारण बनते हैं इन्हें अब–तब निकालते रहना चाहिए। पौधे से हरे पत्ते कभी न काटें।

स्टाइल, पेरिन्थ और नर कली नाश :

इससे फिंगर टिप रोग का नियंत्रण हो जाता है। जब धेला (घार) बहुत छोटा होता है उसी समय पेरिन्थ और स्टाइल निकाल दें। नर कली अथवा हार्ट को तब निकालें जब धेले (घार) में अंतिम गुच्छा आ जाता है और फूल ऊपर की तरफ मुड़ने लगते हैं।

सहारा देना :

ऊँचे किस्मों के लिए सहारा देना बहुत जरूरी है। बांस, केसुरिना या नीलगिरी के लट्ठों से सहारा दिया जाता है। सस्ते साधन के प्लास्टिक या रस्सी का भी इस्तेमाल करते हैं।

मिट्टी चढ़ाना :

थाल से मिट्टी के बहाव को रोकने के लिए 2-3 महीने में एक बार पौधे के चारों ओर मिट्टी चढ़ाना आवश्यक है ताकि स्यूडोस्टेम का पानी से सीधा संबंध न बने।

मेटोकिंग :

धेले (घार) की कटाई के बाद तने को विभिन्न अवस्था में काटते जाना चाहिए ताकि 40-50 दिनों तक अगले रेटून फसल को पोषण मिलती रहे।

रोग

पनामा विल्ट :

रोगरोधी किस्में उगाना जैसे ड्वार्फ केवेन्डिश, रोबस्टा और ग्रेन्ड नेने, सारे खेत में सस्यावर्तन फसलों को लगाना, आदि नियंत्रण तरीके हैं। साथ ही, कार्बेन्डाजिम (0.2%) से सकर का उपचार और रोपण के पांचवें, सातवें और नौवें महीने में कार्बेन्डाजिम से इन्जेक्ट करने से इस रोग की रोकथाम की जा सकती है।

सिगाटोका पर्ण दाग :

पौधों में अधिक दूरी रखने से आर्द्रता कम की जा सकती है और अंततः रोग संक्रमण को भी कम किया जा सकता है। कार्बेन्डाजिम (0.1%) / ट्रिडेममोर्फ (0.05%) / प्रोपीकोनाजोले (0-1%) का छिड़काव प्रभावकारी रहा।

इरविनिया गलन :

रोपण के पहले सकर को कॉपर आक्सीक्लोरेड (0.5%) में डुबोयें अथवा एमिसान (200 पी.पी.एम.) से गीला करना उचित है।

कन्द गलन :

रोपण के पहले कन्दों को छीलकर 1.25 ग्रा./ली. एसेफेट में डुबोएं और पाक्षिक अंतर पर 1 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण से गीला करने की सिफारिश की गई है।

गुच्छ शीर्ष :

रोगरहित बगीचों से स्वस्थ सकर लें अथवा रोगरहित ऊतक संवर्धित पौधों को ही लगाएं। रोपण के 75 और 165 दिनों के बाद मिट्टी में कार्बोफ्यूरान डालें। ग्रसित पौधों एवं टहनियों का नाश करने से भी इस रोग के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

केले का स्ट्रीक विषाणु :

यह रोग केले उगाए जाने वाले सभी क्षेत्रों और खासकर पूवन में देखा जाता है। इसके प्रकोप तथा लक्षण भिन्न प्रकार के होने के कारण उपज पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसके लक्षण हैं पत्ते के बीच की नस पर अथवा पत्तों की चौड़ाई पर पीली धारियां बनने लगती हैं जो बाद में पानीदार धब्बे जैसे हो जाते हैं। जब प्रकोप भयंकर हो तो पीली धारियां तने पर (स्यूडोस्टेम), पीतियोल और मध्य शिरा के निचली सतह पर भी फैल जाता हैं अन्य किस्मों पर भी यह रोग फैलता जा रहा है। ग्रसित पौधों का तुरंत नाश कर दें और अच्छी हवादार खेती शुरु करें। स्वस्थ रोपण सामग्री का इस्तेमाल करें और ग्रसित पौधों के सकर का इस्तेमाल न करें।

केले का ब्रेक्ट मोजेक विषाणु :

इसके लक्षण हैं स्यूडोस्टेम पर पीले अथवा गुलाबी रंग की धारियां बननी शुरु हो जाती हैं और ब्रेक्ट पर जामनी रंग के तकली के आकार के चित्र बनते जाते हैं। ग्रसित पौधों को नष्ट कर दें और अच्छे प्रबन्ध तकनीक अपनाएं तथा स्वस्थ रोपण सामग्री का इस्तेमाल करें। अन्य सुग्राही किस्में हैं नेन्द्रन, मोन्थान, पूवन,

नेय पूवन, रसथाली, रोबस्टा, कर्पूरवल्ली ओर अताहियाकोल।

संक्रमिक क्लोरोसिस :

क्लोरोटिक अथवा पत्तों पर पीले धब्बे या फिर पूरे पत्ते पर धब्बेदार चिन्ह इस रोग के लक्षण हैं। पत्तों की नसों का असामान्य रूप से मोटा होना भी देखा गया है। स्वस्थ रोपण सामग्री का इस्तेमाल करें और ग्रसित पौधों को नष्ट कर दें।

अन्य सुग्राही किस्में हैं पूवन, बसराय, थेलाचक्कर केली, लालवेल्ली और नेन्द्रन। इसके साथ खीरा अथवा तरबूज वर्गीय फलों को अंतर सस्य के रूप में न लगाएं।

कीट् पीड़क

कन्द विविल :

स्वस्थ सकर लगाने पर यह रोग नहीं रहता। गड्ढों में 10-15 ग्राम कार्बोफ्यूरान डालें।

थ्रिप्स :

इस कीट को 1.25 ग्रा./ली. एसेफेट के छिड़काव से रोका जा सकता है। एसेफेट के छिड़काव से रोका जा सकता है।

स्यूडोस्टेम बेधक :

सकर को कोपाईरीफोस (2.5%) में डुबोएं। चौथे महीने से मासिक अंतर पर क्लोर्पाइरिफोस (0.055) का छिड़काव करें अथवा मिट्टी में 0.2% कार्बरिल मिलाएं।

स्कारिंग बीटल :

केले के पौधे के बीच 30 मि.ली. (1.25 ग्रा./ली.) एसेफेट डालें।

सूत्रकृमि :

सकर की छटाई करके या हीट थेरेपी से या फिर रासायनिक तरीके से या इन सभी के मिश्रित नियंत्रण विधि से केला को रोग रहित बनाया जा सकता है। छिले हुए कन्दों को गर्म पानी में 55° सें. पर 10 मिनट तक रखने अथवा कार्बोफ्यूरान 3 जी (40 कि./सकर) में प्रोलीनेज और एसेफेट में 45 मिनट तक डुबोकर रखें अथवा 2 किलो/है. के दर से मिट्टी में कार्बोफ्यूरान डालने पर सूत्रकृमि की रोकथाम की जा सकती है। इसके अतिरिक्त छंटाई और एसेफेट (1.25 ग्रा./ली.) में 60 मिनट तक डुबोना और गेंदे (हरा भाग) को 2 ग्रा./एम2 (बीज दर) मिलाना अथवा बुआई के 90 दिन बाद सनहेम्प 10 ग्रा./एम2 (बीज दर) उपचार भी प्रभावी पाया गया।

कटाई :

केले की पक्वता मानक हैं फलों में कोणीय भाग न रह कर वे भरे हुए हो जाएं। बाजार की दूरी के आधार पर तीन चौथाई अथवा पूर्ण पक्व अवस्था में कटाई की जानी चाहिए। फलों का भरा हुआ होना केवल कुछ ही किस्मों के लिए लागू होता है जैसे रोबस्टा, ग्रेंड नेने, ड्वार्फ केवेन्डिश, रसथाली और नेय पूवन। यह सिद्धांत सब्जी वाले केले को लागू नहीं होता क्योंकि वे पूरे तैयार अवस्था में भी कोणीय ही रहते हैं।

पैदावार :

केवेन्डिश की औसत उपज 50-100 टन/है. है तथापि अच्छी खेती विधि, घना रोपण आदि से 150 टन/है. उपज प्राप्त की जा सकती है। पूवन, रसथाली और मोन्थान जैसी किस्में 40-65 टन/है. उपज देती हैं।

अर्थशास्त्र :

26 महीने में दो फसल चक्र (सीधा फसल तथा रेटून फसल) द्वारा रोबस्टा में घने रोपण से हेक्टर 1.5x1.5 की दूरी रखकर 4444 पौधे लगाए जाने पर 3.5 लाख रु. शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सका। एक किलो फल की कुल लागत 2.86 पैसे से 1.50 पैसे क्रमानुसार सीधा फसल और रेटून फसल के लिए लगता है।